P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-VIII* April-2016

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में भारतीय जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति

सियाराम मीणा
व्याख्याता,
हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
सांगोद,कोटा,
राजस्थान

सारांश

जीवन मूल्य किसी भी समाज की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए अपरिहार्य उपादान होते हैं। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति मूल्यों के प्रति प्राचीन काल से ही सजग एवं संवेदन"ाील रही हैं। हमारे म्ल्यों के संरक्षण एवं संवर्द्धन में साहित्य की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। हमारा प्राचीन साहित्य हमारे जीवन मूल्यों का मूल उत्स है। हमारी साहित्य परम्परा का अध्ययन करके हम हमारे जीवन मूल्यों का अध्ययन कर सकते हैं। हमारा परम्परागत साहित्य मूल्यों का निर्माता सहित्य है; तो वर्तमान साहित्य मूल्यों में आयी गिरावट के प्रति चिंता, चिन्तन और उनके पुनर्निमाण का साहित्य है। भारतीय मूल्यों के प्रति आज चिन्तन करना अधिक प्रासंगिक है क्योंकि वर्तमान में भौतिकतावादी जीवन दृष्टि व पा"चात्य प्रभाव के कारण भारतीय संस्कृति व जीवन मूल्यों का ह्रास हुआ है। भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का वह काल खण्ड है, जिसमें भारत के धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का निर्माण हुआ। वे जीवन मूल्य आज भी हमारे दे"ा, समाज और व्यक्ति का मार्गद"ान करते हैं। परिवे"ा की दृष्टि से भक्तिकाल भारत के इतिहास का ऐसा कालखण्ड है जिसमें मुगल राजनीति के पराभव, सामाजिक अधःपतन, धार्मिक विकृतियों तथा मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ। लेकिन इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना भक्ति–आन्दोलन की रही। इस आन्दोलन के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रगाढ़ चिन्तन और मानव कल्याण के लिए अनेकानेक दार्शनिकों, विचारकों, भक्त कवियों एवं संतों ने अपनी प्रेममयी वाणी से इस चेतना को स्थान दिया। सूर, तुलसी, कबीर, जायसी, दादूदयाल, सुन्दरदास, रैदास, नानक देव, गुरू गोविन्द सिंह, मीरा, रसखान आदि न जाने कितने संतों की वाणी ने जो कुछ भी कहा वह सब जीवंत और कालजयी मूल्य है। प्रस्तुत शोध अध्ययन में जीवन मूल्य, जीवन मूल्य व समाज, साहित्य व जीवन मूल्य, हिन्दी साहित्य और जीवन मूल्य तथा भक्तिकालीन साहित्य की मूल्य चेतना की अन्वेषण व वि"लेषण किया गया है।

मुख्य शब्दः जीवन मूल्य, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति, समाज, आधुनिकता,भौतिक, आध्यात्मिक, भक्तिकाल।

प्रस्तावना

जिन धारणाओं, व्यवहारों, आस्थाओं, आचरणों और वि"वासों से मानव का भौतिक और आध्यात्मिक जीवन उच्चता की ओर प्रगति"ाील होता है; वे धारणाएं, वि"वास, आस्थाएं एवं व्यवहार ही जीवन मूल्य कहलाते हैं। समय और परिस्थिति के अनुसार इनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन और परिमार्जन होता रहता है। लेकिन इनमें कुछ मूल्य ऐसे भी होते हैं जो शा"वत, कालजयी और सार्वजनीन होते हैं। जीवन मूल्य मानव सभ्यता के लिए अपरिहार्य उपादान हैं, इनके बिना किसी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती। जैसा कि डॉ. रमे"ा दे"ामुख ने लिखा है कि **'मानव जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता रखने वाले गुणों को जीवन मूल्य कहा जा जाता है। मूल्य शाश्वत, व्यवहार है। इनका निर्माण मानव के साथ हुआ है। यदि इनका अंत होगा तो सभ्यता के साथ–साथ मानवता भी समाप्त हो जायेगी।'**[1] अर्थात जीवन मूल्य मानव सभ्यता और संस्कृति के आधार तत्व हैं। **'मूल्य–विहीन समाज की कल्पना नहीं की जा साकती। पत्येक अस्तित्वशील समाज मूल्यों की बुनियाद पर स्थित है।'**[2] मूल्य एक ऐसा मापदण्ड है जो सम्पूर्ण संस्कृति एवं समाज को अर्थ एवं महत्ता प्रदान करता है।[3] इसलिए कोई भी समाज मूल्यों की उपेक्षा नही कर सकता। मूल्यों के निर्माण की प्रकिया निरंतर गतिमान रहती है। उनकी दि"ाा एवं स्वरूप परिवे"ा और समाज मिलकर तय करते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत शोध पत्र 'भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में भारतीय जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति' की केन्द्रीय संवेदना भक्तिकालीन के संदर्भ में साहित्य, समाज

और जीवन मूल्य है। इस शोध–पत्र का उद्देश्य मानव सभ्यता और समाज के लिए जीवन मूल्यों प्रासंगिकता एवं महत्व स्थापित करना, मूल्यों की परिभाषा को जानने, समाज और जीवन मूल्यों के अन्तः संबंधों, साहित्य और जीवन मूल्यों तथा भारतीय साहित्य में उपलब्ध जीवन मूल्यों का अध्ययन, भक्तिकालीन परिवेश तथा भक्ति कालीन सांस्कृतिक व साहित्य चेतना में निर्मित तथा अभिव्यक्त जीवन मूल्यों को जानना तथा उनका विश्लेषण कर वर्तमान परिवेश में उन जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता पर विचार करना है। भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य भारतीय साहित्य स्वर्ण शिखर है। इस साहित्य में सार्वजनीन, सार्वदेशिक और सार्वभौमिक कालजयी जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति हुई है। इस शोध–पत्र का उद्देश्य उन मूल्यों का अन्वेषण एवं विश्लेषण करना है।

भारतीय जीवन मूल्य और साहित्य

भारतीय सभ्यता और संस्कृति मूल्य आधारित सभ्यता और संस्कृति है। मूल्य हमारे जीवन के आधार हैं। भारतीय संस्कृति क्षण में नहीं, सम्पूर्णता और पूर्वापर संबंधों में विश्वास रखने वाली संस्कृति है। भारत में परम्पराओं द्वारा संरक्षित तथा ज्ञान–विज्ञान द्वारा प्रतिपादित मूल्यों के प्रति गहरी आस्था रही है। भारतीय जीवन मूल्यों के संस्थापन, संवर्द्धन एवं संरक्षण में साहित्य की भूमिका सर्वाधिक रही है। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत जैसे ग्रंथ हमारे जीवन मूल्यों और मान्यताओं के प्रधान साहित्यिक ग्रंथ है। भारतीय साहित्य में हमारे जीवन मूल्य मुखरित होते हैं। भारतीय साहित्य, चाहे वह किसी भी भाषा, प्रदेश या अंचल का साहित्य हो, का अध्ययन करके यहां के जीवन मूल्यों एवं विश्वासों को भली–भांति जाना जा सकता है। भारतीय जीवन मूल्य आध्यात्मिकता और धार्मिक भावनाओं से निर्मित एवं परिशोधित है। डॉ हौसिला प्रसाद सिंह ने लिखा हैकि **'भारतीय वाङ्मय में मानव मूल्यों की जो परंपरा दिखलाई पड़ती है वह ईश्वरवादी, धर्म प्रधान और भाववादी ही है। ईश्वर सगुण हो या निर्गुण, उसकी उपासना के लिए कुछ विशिष्ट मूल्यों की सर्जना की गई थी। ये विशिष्ट मूल्य थे, ज्ञान, भक्ति और कर्म। भारतीय प्राचीन और मध्यकालीन मनीषियों ने ही नहीं, आधुनिक विद्वानों ने भी इन मूल्यों को एक सामाजिक आधार प्रदान किया है। धीरे–धीरे इन प्रमुख मूल्यों के कारक तत्वों प्रेम, श्रद्धा और विश्वास को मूल्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया।'**[4] भारतीय मूल्यों के विषय में एक और तथ्य और सत्य कथन यह है कि भारतीय जीवन मूल्य विश्व में सबसे अधिक संवेदनशील, मानवीय, सामाजिक, लोकतांत्रिक तथा विश्व कल्याण की भावना से औतप्रोत है। समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व, सत्य, न्याय, दया, करूणा, परोपकार, आंतरिक शुचिता, परहित, समन्वय, सह अस्तित्व, सामाजिकता, पारस्परिकता, नैतिकता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता, वसुधैवकुटुम्बकम की भावना, राष्ट्रभक्ति, सहिष्णुता, पाप–पुण्य की भावना से संयुक्त कर्म निष्ठा, तप, निष्ठा, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य, वीरता, विश्वास, श्रद्धा, लोकतांत्रिकता आदि ऐसे मूल्य हैं जो मात्र भारतीय हैं तथा जिनके कारण विश्व में भारत की प्रतिष्ठा है।

हिन्दी साहित्य और जीवन मूल्य

वर्तमान में मूल्यपरक गिरावट के प्रति वैश्विक स्तर पर चिन्ता व्यक्त की जा रहा है। भारत में वर्तमान में आधुनिकता, पाश्चात्य सभ्यता तथा भौतिकतावादी जीवन दृष्टि के प्रभाव से परम्परागत भारतीय जीवन मूल्यों को आघात पहुंचा है,जिससे हमारी संस्कृति में मूल्यपरक गिरावट आयी है। लेकिन हिन्दी साहित्य का मूल्य बोध व्यापक है। हिन्दी साहित्य की कोई भी विधा हो, सभी में भारतीय मूल्यों के प्रति गहरी आस्था और मूल्यों की अभिव्यक्ति के प्रति सजगता रही है। अगर यह कहा जाय कि भारतीय मूल्य बोध हमारे साहित्य की केंद्रीय संवेदना है तो अतिशयोक्ति नही होगी। हमारा परम्परागत साहित्य मूल्यों का निर्माता सहित्य है; तो वर्तमान साहित्य मूल्यों में आयी गिरावट के प्रति चिंता, चिन्तन और उनके पुनर्निमाण का साहित्य है। भारतीय मूल्यों के प्रति आज चिन्तन करना अधिक प्रासंगिक है। क्योंकि आधुनिकता की चमक–दमक और दौड़–धूप में मूल्यों से दूर जाते हुए मनुष्य को ऐसा लग रहा है कि वह भौतिक दृष्टि से सफल होकर भी मूल्यों के अभाव में हताश और निराश ही नही अपितु अपने आप को खोखला अनुभव कर रहा है। यदि हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो यह कहना अनुचित न होगा कि भक्तिकालीन साहित्य भारतीय मूल्यों का प्रतिष्ठापक साहित्य है।

भक्तिकालीन साहित्य और जीवन मूल्य

भक्तिकाल हिन्दी साहित्य का वह काल खण्ड है, जिसमें भारत के धार्मिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन मूल्यों का निर्माण हुआ। वे जीवन मूल्य आज भी हमारे देश, समाज और व्यक्ति का मार्गदर्शन करते हैं। भक्तिकाल के संदर्भ में ग्रियर्सन ने कहा है कि **''हम अपने आप को ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं, जो उन सब आन्दोलनों से अधिक विशाल है, जिन्हें भारत वष ने कभी देखा है, यहां तक कि बौद्ध धर्म के आन्दोलन से भी अधिक विशाल है, क्योंकि इसका प्रभाव आज भी वर्तमान है। इस युग में धर्म ज्ञान का नही, बल्कि भावावेश का विशय हो गया था।''**[5] भक्तिकाल का साहित्य मानव मूल्यों का निर्माता साहित्य है। परिवेश की दृष्टि से भक्तिकाल भारत के इतिहास का ऐसा कालखण्ड है जिसमें मुगल राजनीति के पराभव, सामाजिक अधःपतन, धार्मिक विकृतियों तथा मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ। लेकिन इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना भक्ति–आन्दोलन की रही। इस आन्दोलन के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रगाढ़ चिन्तन और मानव कल्याण के लिए अनेकानेक दार्शनिकों, विचारकों, भक्त कवियों एवं संतों ने अपनी प्रेममयी वाणी से इस चेतना को स्थान दिया। इनके द्वारा तत्कालीन समाज में व्याप्त नैतिक और मानवीय मूल्यों के पतन की प्रवृत्तियों के विरोध–स्वरूप एक नवीन भक्तिधारा की चेतना का संचार समाज में किया गया। इस नयी सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक चेतना द्वारा मानवीय–मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित कर समाज में प्रेम और सद्भाव की भावना को मुखरित किया गया।

सूर, तुलसी, कबीर, जायसी, दादूदयाल, सुन्दरदास, रैदास, नानक देव, गुरू गोविन्द सिंह, मीरा,

रसखान आदि न जाने कितने संतों की वाणी ने जो कुछ भी कहा वह सब जीवंत और कालजयी मूल्य है। गोस्वामी तुलसीदास ने भारत के राजनीतिक अधःपतन को रेखांकित करते हुए राजनीतिक आद"ार्ा के रूप में मूल्यों की स्थापना की है। वे लिखते हैं कि **'काल कराल नृपाल कृपाल न राज समाज बड़ो ही छली है'** जो राजा प्रजा का पालक होता है, वह शोषक और अततायी की भूमिका में दिखाई देता है। एक राजा ही नही, पूरा राज–समाज ही जनता को छलने वाला था। तुलसीदास राम के माध्यम से तत्कालीन राजाओं के सामने राजतंत्र की भीत्तो पर लोकतांत्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। राम जनसभा में कहते हैं कि **'जो अनीति कछु भाशों भाई, तो बरजे मोही भय विसराई।'** उस अमानुसिक सामंती वातावरण में ऐसे लोकतांत्रिक मूल्य की प्रतिष्ठा भारत के भावी लोकतंत्र के उदय की भूमिका माना जा सकता है। तुलसीदास ने रामराज्य को भारतीय राजनीति के लिए आद"ार्ा मूल्य के रूप में प्रस्तुत किया है। तुलसी के रामराज्य की कल्पना आज की स्वराज्य अवधारणा से भी अधिक जन कल्याणकारी और प्रजातांत्रिक दिखाई देती है। वे रामराज्य का आद"ार्ा प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि

''बयरू न कर काहू सन कोई।
रामप्रताप विशमता खोई।।
दैहिक, दैविक, भौतिक तापा।
राम राज नहिं काहुहिं व्यापा।।''

उनकी राजनीति व्यवस्था शांति और सदाचार की व्यवस्था थी। सभी लोग परस्पर भाईचारे के साथ रहते हैं। सभी अपने धर्म और नीति का पालन करते हुए सन्मार्ग पर चलत हैं। जनता दुखः और दरिद्रता से मुक्त है। यथा–

''सब पर करहिं परस्पर प्रीति ।
चलहिं स्वधरम निरत श्रुतिनीति।।
अलप मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा।
सब सुन्दर सब निरूज सरीरा।।
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना।
नहिं कोउ अबुध न लच्छनहीना।। ''

तन–मन और धन ही मानव जीवन के प्रधान साधन है और इन्हीं की विकृतियों का नाम रोग, अज्ञान और दारिद्रता है। शासन वही सफल है जो इन तीनों विकृतियों को दूर कर दे।[6] रामराज्य ऐसा ही राज्य था। एक प्रकार से तुलसी की कल्पना का लोकतंत्र था। इसी प्रकार तुलसी ने रामराज्य के वर्णन व अन्य स्थानों पर एक आद"ार्ा समाज के लिए आव"यक समस्त मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। तुलसी का सम्पूर्ण काव्य आद"ार्ों मूल्यों का भण्डार है। उसमें सामाजिक, राजनीतिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा हुई है।

कबीर आदि निर्गुण संतों का काव्य भारतीय परम्परा और जीवन मूल्यों की परख का भण्डार है। उनका काव्य भारतीय मूल्यों में उत्पन्न दोषों का परिमार्जन करता है। भारतीय जन मानस आत्मानु"ाासन को मूल्य के रूप में देखता है। कबीर का मानना है कि व्यक्ति किसी बाहरी भय से नही अपितु अपनी आत्म चेतना और ई"वरीय आस्था से सन्मार्ग पर चल कर कर्म करता है। जिस व्यक्ति के मन में सत्य और ई"वर का भय है, वह कभी भी अनुचित काम नही कर सकता। यथा–

'डर करनी डर परमगुरू, डर पारस डर सार।
डरत रहे सो ऊबरै, गाफिल खावे मार।।

विजेन्द्र स्नातक ने लिखा है कि कबीर का लोकधर्म जीवन की व्यवहारिक द"ाओं से उपजा है, इसलिए उन्होंने सामाजिक के आत्म परिष्कार की सम्भावनाओं को आचरण की कसौटी पर सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।[7]

भक्तिकालीन साहित्य में लोकमंगल की भावना का पोषण हुआ है। जिससे वह लोक मंगल का विधायक साहित्य बन सका है। परोपकार की भावना भारतीय जीवन मूल्यों एवं आद"ार्ों का पवित्र रूप है। परोपकार की भावना भारतीय जन मानस में गहरी है। तुलसीदास जी कहते हैं कि

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।।"

परहित धर्म है और पर पीड़ा अधर्म है। यह भारतीयनैतिक मूल्यों, मान्यताओं और व्यवहार का सार तत्व है। गुरू का स्थान हमारी संस्कृति में सबसे ऊपर है। गुरू पथ प्रद"ार्क होता है। वह अंधेरे से उजाले की ओर ले जाने वालाहोता है। भक्तिकाल के सभी कवियों ने इस मत को स्वीकार किया है। कबीरदास जी ने लिखा है कि

"गुरू गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय।
बलिहारी गुरू आपकी, जिन गोबिन्द दियोमिलाय।।"

गुरू ज्ञान का दाता है। वह ज्ञानचक्षुओं को खोलने वाला होता है। इस संसार और ब्रह्म का वास्तविक ज्ञान कराने वाला पथप्रद"ार्क गुरू ही होता है। कबीरदास जी ने लिखा है कि '

सतगुरू की महिमा अनन्त,
अनन्त किया उपकार,
लोचन अनन्त उघाड़िया,
अनन्त दिखावन हार।'

मलिक मुहम्मद जायसी ने भी इस मूल्य की प्रतिष्ठा करते हुए लिखा है कि

"गुरू सूआ जेहि पंथ दिखावा"।
बिनु गुरू जगत को निर्गुन पावा।

निःस्वार्थ भाव से काम करना हमारी संस्कृति में मूल्यों के रूप में प्रतिष्ठित है। कबीरदास जी ने लिखा है कि

'स्वारथ को सबको सगा, जग सगलाही जांणि।
बिन स्वारथ आदर करै, सो हरि की प्रीति
पिछाांणि।'

निःस्वार्थ भावना से किया गया कार्य धर्म स्वरूप और परोपकार ही है। यह भावना हमारे नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा करती है।

सज्जन व्यक्ति का साथ कभी दुखदायी नही हो सकता, वह जीवन में वि"वास और सद्प्रेरणा देने वाला ही साबित होता है। तो कुसंगति दुर्गुणों और दुष्प्रवृत्तियों की ओर धकेलने वाली होती है। भक्त कवियों ने सत्संगति की प्र"ांसा और कुसंगति की निन्दा की है।

'सत्संगति' को सभी भक्त कवियों ने एक आद"ार्ा मूल्य के रूप में स्थापित किया है। कबीरदास जी कहते हैं कि

कबीर संगति साधु की, कदे ने निरफल होई।
चंदन होसी बांवना, नींब न कहसी कोई।'

जिस प्रकार भगवद् की कृपा से भगवान की प्राप्ति होती है वैसे ही साधु–जनों की प्राप्ति भगवत्कृपा से ही होती है। साधु–संगति को ही कबीर बैकुण्ड मानते हैं। वे साधु–संगति के महत्व को भली–भांति जानते हैं। उनके पावन प्रभाव से वे चिर–परिचित थे। वे लिखते हैं कि

संत की गैल न छांड़ियै, मारगि लागा जाउ।
पेखत ही पुन्नीत होई, भेटत जपियै नाउ।।

इसी प्रकार भक्तिकालीन संतों ने सज्जनों की संगति को ई"वर की भक्ति और संगति के बराबर माना है। कबीर दास जी लिखते है कि

जा घर साध न सेवियही, हरि की सेवा नांहि।
ते घर मरहट सारखे, भूत बसहिं तिन मांहि।

भक्तिकालीन कविता धर्म और अध्याात्म से जुड़ी होकर भी वह सबसे पहले मानवतावादी कविता है। कबीर के बारे में लिखा है कि

'कबीर एक मानववादी कलाकार थे। मानव उनकी कविता की केन्द्रीय इकाई है। वे विश्व–मानव को विकसित अवस्था में देखने के लिए लालायित है। उनकी दृष्टि में मानव मात्र को विकसित स्थिति तक पहुंचाने वाले तत्वों को ही 'मानव–मूल्य' कहते हैं। इन मूल्यों की सृजन–प्रक्रिया के लिए जितना जिम्मेदार व्यक्ति है उतना ही समाज भी। मूल्यों के निर्माण में आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिवश और उस परिवेश से उत्पन्न द्वन्द्वात्मक स्थिति का विशेष हाथ होता है।[8]

कबीर आदि संतों ने मध्ययुगीन परिवे"ा में व्याप्त अमानवीय तत्वों के प्रति खुला विद्रोह कर नवीन मूल्यों और मान्यताओं को स्थपित किया था। ये मान्यताएं शुद्ध सामाजिक और मानवतावादी थी। 'उन्होंने धर्मों के अनेक प्रचलित रूपों की कमियों, विसंगतियों, अन्तर्विरोधों और द्वन्द्वों को खुली आँखों से देखा। वे हिन्दू मुसलमान, सिख और ईसाई जैसे जाति–पांति के पचडे में नहीं पड़े। वर्ग, वर्ण, धर्म और द"ान के भेद–भाव और आचार–विचार से उनका कोई लेना देना नहीं। वे तो सच्चे रूप में एक मनुष्य हैं, ई"वर भक्त है ... उन्होंने जाति, वर्ग, वर्ण, धर्म और द"ान की विकृतियों को कविता के माध्यम से जन मानस के सामने उजागर किया जिससे मनुष्यों के बीच से भेद–भाव की चेतना समाप्त हो जाये।''[9] उन्होंने पद–पद पर वर्णगत धर्म की जर्जर रूढ़ियों और सामंती मूल्यों का विरोध कर सहिष्णुता और भाईचारे का मार्ग प्र"ास्त करते हुए लिखा है कि –

जो पै करता वरण विचारै,
तो जनमत तीनि डांडि किन सारे।
...नहीं काई ऊँचा, नहीं कोई नीचा,
जाका प्यंड ताही का सींचा।
जो तू बाँभन बभनी जाया,
तो आन बाट ह्वै काहै न आया।।
जो तू तुरक तुरकनी जाया,
तो भीतरि खतना क्यँ न कराया।।

इसके साथ ही कबीरदास जी ने अहंकार को खत्म कर प्रेम और समर्पण के भाव का प्राचार प्रसार किया था। कबीर का प्रेम ई"वरीय या आध्यात्मिक तो है ही वह लोक जीवन में समरसता लाने वाला भी है। उन्होंने वासना से दूर मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा की थी। वे लिखते है कि

'कबीर निज घर प्रेम का, मारग अगम अगाध,
सीस उतारि पग तल धरै, जब निकटि प्रेम का स्वाद।।

अहंकार के त्याग से ही शील और सदाचार जैसे मूल्यों की प्रतिष्ठा हो सकती है। चाहे वह भक्ति के क्षेत्र में हो या सामाजिक जीवन के क्षेत्र में। कबीर का मानना है कि जब तक अहंकार है तब तक व्यक्ति के मन में न ई"वर का वास हो सकता है और न ही मानवीय प्रेम की प्रतिष्ठा हो सकती। वे कहते हैं कि

जब मैं था तब हरि नही, अब हरि है मैं नाहिं,
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहि।

शील और सदाचार जैसे मूल्य की प्रतिष्ठा जिस प्रकार भक्तिकाव्य में हुई है; वैसे हिन्दी साहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। तुलसीदास जी कहते है कि

सूधे मन, सूधे वचन, सूधी सब करतूति।
तुलसी सूधी सकल विधि, रघुवर प्रेम प्रसूति।।

तुलसीदास शील, सदाचार, अहंकार का त्याग, उच्चतर व्यक्तिगत व सामाजिक गुणों की प्रतिष्ठा की कामना करते हुए कहते है कि –

''कबहुंक हौं यह रहनि रहौंगो।
यथा लाभ संन्तोश सदा,
काहू सौ कछु न चहौंगो।
परहित निरत, निरंतर, मन कम वचन नेम बिहौंगो।
परूश वचन अति दुसह श्रवण सुनि, तेहि पावक न दहौंगो।
विगत–मान समशीतल मन, पर गुनु नहिं दोख कहौंगो।
परिहरि देह जनित चिंता, दुख–सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथ, अविचल हरिभक्ति लहौंगो।। ''

मन ही समस्त विकारों– सकारात्मक व नकाराात्मक, का जनक है। इसलिए सद्वृत्तियों के विकास के हेतु भक्तिकालीन कवियों ने मन के परिस्कार पर सर्वाधिक बल दिया है। मनुष्य की अभिरूचियां और सौंदय बोध मन के संस्कारों द्वारा ही निर्मित होते हैं। इसलिए चंचल मन को नियंत्रित और परिस्कृत करने की बात हर भक्त कवि ने कही है। कबीरदास जी कहते हैं कि

'मन के मतै न चालिये, छाँडि जीव की बाणिं।
ताकू केरे सूत ज्यं, उलटि अपूठा सूत आंणि।

तो दूसरी तरफ कबीरदास जी कहते है कि **'मन गोरख मन गोबिंदौ, मन हीं औघड़ होइ। जे मन राखै जतन करि, तौ आपै करता सोइ''**

भक्तिकालीन संतों और कवियों ने मन के विकारों को सभी बुराईयों की जड़ माना है। चाहे सूर हो कबीर हो, तुलसी हो या अन्य भक्ति कवि। सूरदास जी अपने मन के समस्त विकारों को भगवान श्री कृष्ण के सामने प्रकट कर देते हैं ओर उनसे मुक्ति की कामना करते है

प्रभु हों सब पतितन को टीको.....
अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल।

तो तुलसीदास ने विकारों के त्याग तथा मन और हृदय की निर्मलता की बात कही है। यथा–

जो निज मन परिहरै विकारा।
तो कत द्वै जनित संसृति–दुख संसय सोक अपारा।

भक्तिकालीन संतों और भक्तों की सबसे बड़ी देने यह है कि उन्होंने धर्म और अध्यात्म की पीठिका पर सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा की। समाज का आज तक जिस तत्व ने पतन और विखण्डन किया है वह है

जातिवाद और साम्प्रदायिकता।

कबीर ने ऐके"वरवाद की प्रतिष्ठा कर समस्त मानव को ई"वर की सन्तान मानते हुए जातिवादी जहर की घौर निन्दा की है। वे स्पष्ट रूप से कहते है कि

जाति न पूछो साधू की, पूछ लिजिए ज्ञान
मोल करो तलवार का पड़ रहन दो म्यान।

कबीर के यहां व्यक्तित्व की पूजा होती है, जाति की नहीं। सभी संतों ने जातिवादी भेद–भाव को न केवल नकारा है अपितु उसकी निन्दा की है। भक्तिकालीन साहित्य में समाज के समस्त पक्षों में पारस्परिक समन्वय की बात कही है। दे"ा की एकता और अखण्डता तथा सामाजिक और सांस्कृतिक समरसता के लिए इस समन्वय की आज और अधिक जरूरत है। दे"ा में जातिवाद, सम्प्रदायवाद और अलगाववाद हावी होता जा रहा है। ऐसे में भक्तिकालीन साहित्य में स्थापित मूल्यों को जीवन में उतारने की आव"यकता है। आज हमारे सामने राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय महत्व की अनेक समस्याएं मुंह बाए खड़ी है। लेकिन ऐसे चुनौति भरे वातावरण में हम मंदिर–मस्जिद के विवाद में उलझकर, जाति और साम्प्रदायिक विद्वेष की आग में दे"ा को झौंक रहे हैं जिसका कोई समाधान नही है और न ही कोई राह। ऐसे में समस्त भेदों को भुलाकर मानवता और भाई–चारे की राह के अलावा कोई समाधान नही है। कबीर आदि संतों ने आज से छःसौ वर्षों पहले इस समस्या पर गंभीरतापूर्वक विचार कर साम्प्रदायिक सद्भाव, एकता और समानता का मूल्य परक संदे"ा दिया था। वे लिखते है कि

''अरे इन दोउन राह न पाई/हिन्दुन की हिन्दुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई/कहै कबीर सुनो भाई साधो, कौन राह ह्वै जाई।'

ऐसे में कबीर ने बाह्य कर्मकाण्डों का निषेध कर साधारण जनता के लिए एक सुगम मार्ग की खोज की थी। इसे साधारण जनता के सामने पूरे वि"वास के साथ उन्होंने प्रस्तुत किया। कबीरदास जी ने कहा है कि

संतों राह दुनौ हम दीठा/हिन्दु–तुरक हटा नहिं मानै स्वाद सबन को मीठा/हिन्दु तुरक की एक राह है सतगुरू इहैं बताई/कहहिं कबीर सुनौ हो संतों राम न कहेउ खुदाई।'

भक्त कवियों ने मनुष्य–मनुष्य में भेद को अस्वीकार किया है। उन्होंने कर्मकाण्डों और पाखण्डों से दूर रह कर मानव मात्र की एकता की बात कही है। जाति और सम्प्रदाय के आधार पर नफरत की दीवार ने भारतवासियों में भेद–भाव फैलाया है। गुरू गोविन्द सिंह कहते हैं कि सभी प्राणी उस एक ई"वर की संतान है। कृत्रिक भेदों को फैलाकर समाज को भ्रमित नहीं करना चाहिए–

''हिन्दू तुरक कोऊ राफजी इमामसाफी,
मानस की जात सभै एक पहिचानबो।
करता करीम सोई राजक रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई भूल भ्रम मानबो।
एक ही की सेव सभ ही को गुरूदेव एक,
एक ही सरूप सभै एकै जोत जानबो।''

जायसी ने प्रेम तत्व की प्रतिष्ठा के लिए मुस्लिम होते हुए भी हिन्दू पौराणिक प्रेम कथाओं को माध्यम बनाकर सहिष्णुता व सामाजिक समरसता का परिचय दिया। प्रेममय जीवन का महत्व स्थापित करते हुए जायसी कहते हैं कि

धनि सो खेल खेल सह पेमा।
रउताई ओ कूसल खेमा
मुहमद बाजी पेम कै, ज्यों भावै त्यों खेल
तिल फूलहि के संग ज्यों होई फुलायल तेल।।

आध्यात्मिक प्रेम की अवधारण भारतीय जीवन मूल्यों की आधार"ाीला है। भक्तिकालीन कवियों ने आध्यात्मिक मूल्यों को सामाजिक धरातल पर उतारने का महनीय कार्य किया है। इन कवियों ने धार्मिक संघर्ष को सांस्कृतिक समन्वय में बदलने का कार्य किया।

तुलसीदास जी ने अपनी समस्त काव्य साधना में समन्वय की विराट चेष्टा की है। वे सगुण और निर्गुण के झगड़े को समाप्त करते हुए लिखते हैं कि

सगुणहि अगुणहि नही कदु भेदा,
उभय हरई भव संभव खेदौ

तो दूसरी और शैव–वैष्णव के समन्वय के लिए कहते हैं कि

शिव द्रोही मम भगत कहावा,
सो नर सपनेहुं मोहि नही भावा।

व्यक्ति के **आचरण की शुद्धता, संयम, सदाचार और नैतिकता** हमारे महत्वपूर्ण जीवन मूल्य हैं। भक्तिकालीन संतों और भक्तों ने इन मूल्यों को न केवल कविता में अंकित किया है अपितु अपने आचार–विचार से जनता मे संदे"ा भी दिया है। गुरूगोविन्द सिंह ने तम्बाकू, परस्त्री गमन, चोरी, मदिरा पान जैसी बुराइयों से सदा दूर रहने का संदेश दिया है

'निज नारी के साथ नेह तुम नित बढ़ैयो।
पर नारी की सेज भूल सपने हू न जहयो।'''
पीये तम्बाकू, केस मुनाये, पर तिरिया भोगे,
कुठा खाये।
इहि कुरीतियाँ बढ़ीयाँ चार।
कर बैठे सो होए खुआर।
पर नारी, जुआ, असति, चोरी मदरा जान।
पाँच अैब इहि जगत महि, तजे सो सिंह सुजाना।
कुठा हुक्का चरस तम्बाकू, गंजा टोपी ताड़ी खाकू,
इन की ओर न कबहुं देखै, रहिवंत जो सिंह
बिसेख।'

समग्रतः कहा जा सकता है कि जीवन मूल्य व्यक्ति के जीवन के आधार तत्व होते हैं। मूल्यों से रहित जीवन की कल्पना नही की जा सकती। जब–जब भी दे"ा और दुनियां में मूल्यों के प्रति आस्था कम हुई तब तब मानव को उसका खामियाजा भुगतना पड़ा है। व्यक्ति और समाज की अन्तर बाह्य शांति भंग हुई है। व्यक्ति और समाज की भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति के लिए मूल्यों की स्थिति अपरिहार्य है। भारतीय संस्कृति और जीवन मूल्यों की आधार"ाीला पर स्थित है। वर्तमान युग में हमारे परम्परागत मूल्यों को आघात पहुंचा

है। हमारे साहित्य ने भारतीय मूल्यों को अभिव्यक्त करने, पोषित करने तथा विकसित करने में महती भूमिका निभाई है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में भक्तिकालीन साहित्य इस दृष्टि से स्वर्ण ि"खर पर है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ.रमे"ा दे"ा मुख : आठवें द"ाक की हिन्दी कहानी में जीवन मूल्य– पृ.स. 9
2. डॉ.भरत कुमार सिंह : स्वातंयोत्तर हिन्दी काव्य में जीवन मूल्य प्रथम खण्ड, पृ.सं. 94
3. हुकुमचन्द राजपाल : आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य पृ.सं. 50
4. सं. डॉ्.वासुदेव सिंह : कबीर, पृ.सं. 242
5. सं. धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी साहित्य को"ा भाग–1 पृ.सं. 442–43
6. सं. डॉ.बलदेव प्रसाद मिश्र : तुलसी काव्य– पृ.सं. 81
7. सं. विजयेन्द्र स्नातक : कबीर वचनामृत – पृ.सं.137
8. सं. डॉ. वासुदेव सिंह : कबीर– पृ.सं. 243
9. सं. डॉ. वासुदेव सिंह : कबीर– पृ.सं. 243